आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती की खगोल विद्या एवं गणित सम्बन्धी मान्यताएँ : आधुनिक सन्दर्भ में

लक्ष्मीचन्द्र जैन

"इस बिन्दु पर एक उलझन स्वयं आ खड़ी होती है, जो सभी युगों में शंकित मस्तिष्कों को प्रेरणा प्रदान करती रही है। यह किस प्रकार सम्भव है कि गणित, अनुभूति द्वारा स्वतन्त्र मानवीय विचारों की अन्ततः उपज होते हुए भी, वस्तुओं की वास्तविकता से इतना प्रशंसनीय रूप से उपयुक्त सिद्ध हुआ है ? तब क्या मानवीय न्याय बुद्धि, बिना अनुभव के, केवल विचारों के सहारे, वास्तविक वस्तुओं के गुणों को गहराई नापने में समर्थ है ?"

—अलबर्ट आइन्स्टाइन[1]

आचार्य नेमिचन्द्र को इस तथ्य का सर्वाधिक श्रेय है कि उन्होंने ग्यारहवीं सदी में आगे आने वाली पीढ़ियों को जैन धर्म की सारभूत कर्म सिद्धान्त विषयक अपार सामग्री के बचे हुए अंश के गणितीय विवेचन को सूत्रबद्ध रचनाओं में पिरो दिया। निस्सन्देह, उनके समक्ष उनके पूर्ववर्ती आचार्यों के न केवल मौलिक ग्रन्थ वरन् उन पर रची गईं विशाल टीकाएँ भी उपस्थित रही होंगी और उन्हीं के आधार पर वे अतीव आत्मविश्वास के साथ घोषणा कर सके—

जह चक्केण य चक्की छक्खंडं साहियं अविग्घेण।
तह मइचक्केण मया छक्खंडं साहियं सम्मं॥[2]

सूत्रबद्ध की गईं उनकी रचनाएँ अपने आप में परिपूर्ण, क्रमबद्ध, सरलता से ग्राह्य, संस्थोपयोगी एवं ऐतिहासिक बन पड़ीं। उनमें परम्परागत ज्ञान सामग्री भरपूर आ गई, जो सभी मतों से विलक्षण थी।[3] जहाँ तक न्यायगत पक्ष थे वे तो तुलना की वस्तु बन गये और भारतीय न्याय के अनेक मतों से सीधी टक्कर में आ गये किन्तु नेमिचन्द्राचार्य द्वारा चुनी एवं रची हुई सामग्री सीधी गणितीय थी, विश्वरचना सम्बन्धी तथा सूक्ष्मतम जगत् के रहस्यों से भरी हुई विलक्षण थी, इसलिये वह अपने आप में भारतीय अन्य मतों से अथवा विश्व के अन्य मतों से विलग पनपती चली आई।

हम इस सामग्री की तुलना क्रम से करते चलेंगे और देखेंगे कि ग्यारहवीं सदी के इस ज्ञान सामग्री के क्या मायने थे, क्या उपयोगिता थी और उससे आगे की पीढ़ी किस प्रकार प्रभावित हो सकती थी। इसके पूर्व हम उनकी रचनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे और समसामयिक परिस्थितियों का भी अवलोकन करेंगे।

---

१. आइडियाज़ एण्ड ओपिनिअन्स, लन्दन १९५६।

२. गोम्मटसार, गा० ३९७ क० का०।

३. देखिए, लक्ष्मीचन्द्र जैन, "आगमों में गणितीय सामग्री तथा उसका मूल्यांकन", तुलसी प्रज्ञा, जै० वि० भा०, खंड ६, अंक ९, १९८०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खगोलविद्या

खगोल शब्द ही कुछ ऐसे तथ्यों का द्योतक है, जिनका सम्बन्ध अन्तरिक्ष की गहराईयों और विश्वसंरचना की इकाईयों से है। कोई भी वस्तु कहां स्थित है, कब से स्थित है, किस दशा में है, उसकी विगत दशा क्या थी, अनागत दशा क्या होगी और दशा-परिवर्तन का कारण क्या है—ये प्रश्न स्वाभाविक होते हैं, हर युग के विचारकों को सर्वप्रिय होते हैं और उनकी खोज कभी नहीं मिटती है। उनके हल करने में विचारक का क्या उद्देश्य होता है, यह भी महत्त्वपूर्ण बात है। यदि वह इन प्रश्नों को किसी सीमा तक हल कर लेगा तो उसका उद्देश्य किस अनुपात तक सफल होगा, यह भी गणना कार्यकारी होती है।

उपर्युक्त प्रश्नों को लेकर सबसे बड़ी क्रान्ति यूनान, भारत तथा चीन एवं गौण रूप से इसके आस-पास के देशों में दृष्टिगत होती है। विश्व के सभ्यता वाले इन क्षेत्रों में एक विचित्र उत्सुकता जगी कि विश्व की घटनाओं का सम्पादन कैसे होता है—क्या कोई कार्य या घटना अथवा क्रिया के पीछे दैवी, आधिदैविक शक्तियाँ होती हैं, जिन पर नियंत्रण करने के लिए उन्हें प्रसन्न करना होता है? अथवा कोई देवादि के अप्रसन्न होने से अनिष्टकारी घटनाएं होती हैं, जिन पर मानव का कोई नियंत्रण नहीं होता है?

जैन धर्म में इस नियंत्रण-योग्यता का बड़ी गहराई से अध्ययन हुआ। सभी घटनाओं को, जो पुद्गल (matter) से सम्बन्धित थीं, उन्हें कारणता नियम (law of causation) के अन्तर्गत बांधा गया। न केवल पुद्गल के बीच यह नियम लागू था, वरन् पुद्गल और जीव के बीच यह नियम कर्म के अधीन तथा कुछ और भी भावों के अधीन बांधा गया। विज्ञान की ओर बढ़ने का यह प्रयास और भी विश्व सभ्यताओं में परिलक्षित होता है। वास्तव में यह कारणता नियम तभी सार्थक होता है, जब विगत, वर्तमान और अनागत की तारतम्यता घटनाओं के बीच का सम्बन्ध राशि रूप में परिमाण पुंज रूप में तथा गणितीय कलन रूप में ठीक-ठीक व्यवस्थित किया जाता है। वैज्ञानिक अथवा उसके समूह की सफलता का आधार यही रहा है।

इसके पूर्व कि हम नेमिचन्द्राचार्य की मान्यताओं पर प्रकाश डालें, यह आवश्यक है कि विश्व की खगोल विद्या सम्बन्धी जानकारी का संक्षिप्त परिचय दिया जाये। इस जानकारी को प्राप्त करने के साधन अब अतुलनीय हैं। सूक्ष्मवीक्षण यन्त्र, दूरवीक्षण यन्त्र, रडार, लेसर, मेसर प्रक्षेप यन्त्र, स्पुतनिक अथवा प्रसिद्ध उपग्रह जो अणुशक्ति से संचालित होते हैं, इत्यादि यन्त्र जो गाइजर काउंटर, कम्प्यूटर्स आदि गणक यन्त्रों से विभिन्न प्रकार से अध्ययन की विशाल सामग्री प्रस्तुत कर रहे हैं। शोध के अभिलेख कुछ ही क्षणों में विश्व के एक भाग से दूसरे भाग में सूचित किये जा रहे हैं। इन सभी के पीछे उन वैज्ञानिकों का इतिहास है, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन कारणता के नियमों का शोध करने, अन्वेषणों द्वारा उन्हें स्थापित करने में समर्पित कर दिया। विज्ञान की जागृति का प्रथम प्रयास थेलीज़ (ई० पू० ६००) द्वारा प्रस्तुत होता है, जबकि वे गणना द्वारा यूनान में ग्रहण के लगने का समय बतलाते हैं। यहाँ देवताओं की शक्ति के मत के लिए चुनौती प्रस्तुत होती है। पाइथागोरस (ई० पू० ५४०) विश्व में जीवों की संख्या नियत बतलाते हैं और चतुश्चंकमण (tetractys) से छूटने हेतु मांस-भक्षण-निषेध एवं अहिंसा की प्रतिष्ठा करते हैं तथा हरी फलियों को भी जीवधारी मानकर भोजन की वस्तु नहीं मानते हैं। हर वस्तु और घटना को वे संख्या से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्धित करते हैं और रेखागणित को नियमों में बांधते हैं, जिसमें संगीत के वाद्य यन्त्रों में गणितीय अनुपात प्राप्त किये जाते हैं। सुकरात (ई० पू० ४१५) तर्क को आगमन विधि से पुष्ट करते हैं और सत्य की गहराई में पहुँचने हेतु ज़ीनो (ई० पू० ४५०) अनन्त विषयक तथा अनन्तांश विषयक विरोधाभासों को समय और आकाश की संरचनाओं में प्रस्तुत कर घटनाओं द्वारा गति का विश्लेषण करते हैं।

देमोक्रितस (ई० पू० ४१०) ने परमाणुवाद स्थापित किया। अरस्तु (ई० पू० ३८४ से ३२२) ने तर्क-वाक्यों का सिद्धान्त बनाया और गणितविज्ञान की नींव प्लेतान (ई० पू० ४२७ से ई० पू० ३४७) के साथ डाली ? यूडो (ई० पू० ३७०) ने पृथ्वी की गोलाई नापी और इसी प्रकार टालेमी (—२री सदी) ने ग्रहों के गमन को वृत्त गुच्छों द्वारा समझाने का प्रयास किया और डायोफेन्टस (२७५ ई०) ने यान्त्रिकी तथा उद्स्थैतिकी की नींव डाली। इस प्रकार लगातार विज्ञान, मनोविज्ञान के दायरे को तोड़कर, यन्त्र विज्ञान द्वारा सभी कारणता पर ढलता चला गया। चीन में भी लगभग इन्हीं युगों में वैज्ञानिक क्रान्ति का दृश्य दृष्टिगत होता है। कन्फयूशस, लाओत्ज़े ने दार्शनिकता के पक्षों को वैज्ञानिक रूप में ढालना प्रारम्भ किया।[1] आकाशीय पिंडों का गहन अध्ययन, चित्रों सहित चीन में सर्वाधिक हुआ। नये प्रकार के सिद्धान्त बनाये गये और यूनान तथा चीन में पद्धाङ्गों में सुधार हुए।

न्यूटन (१६४२ ई० से १७२७ ई०) ने विज्ञान-जगत् में जो कार्य किया, वह अभूतपूर्व था। गति सम्बन्धी नियमों ने तथा गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी कलन ने सम्पूर्ण यन्त्र विज्ञान जगत् को एक नई दिशा दी। खगोलीय पिण्डों के गमन का कारण, उनके बीच की दूरियाँ, गतियों में परिवर्तन आदि का आधार गुरुत्वाकर्षण का बल बनाया गया, जिससे आगे आने वाली घटनाओं का समय, स्थिति आदि की गणना सम्भव होने लगी। कोई भी यन्त्र सम्बन्धी घटना से प्रकृति की घटनाओं का कलन किया जाने लगा। यह एक महान सफलता का द्वार था, जिसने प्रकृति के अनेक रहस्यमय ताले तोड़ दिये। किन्तु यह सिद्धान्त सभी घटनाओं में प्रयुक्त नहीं हो सका।

भौतिक कारणता के दूसरे पक्ष मेक्सवेल, लारेन्ज़, आइंस्टाइन आदि ने उद्घाटित किये। विद्युत् चुम्बकत्व के बलों में, उनकी घटनाओं में न्यूटन के नियम सफल न हो सके और एक नयी बुनियाद डाली गई रेखागणित के आधार पर ही। न्यूटन ने रेखागणितीय गमन के आधार पर गुरुत्वाकर्षण के बलों को निकाला और आइंस्टाइन ने चतुर्विभीय रेखागणित के आधार पर गुरुत्वाकर्षण तथा विद्युत् चुम्बकीय बलों को निकाला। खगोलविद्या का आधार यहीं सापेक्षता का सिद्धान्त बना, जिसमें निरपेक्ष का दर्शन केवल सापेक्ष घटनाओं को लेकर होने लगा। अनागत घटनाओं को विगत घटनाओं से सम्बन्धित कर देने के कारण यह एक नियतवाद का प्रयास जैसा था, जिसमें अगले क्षण होने वाली सम्बन्धित घटना ज्ञात की जा सकती थी।

किन्तु सूक्ष्म जगत् का नियम प्लांक द्वारा क्वांटम सिद्धान्त के रूप में कुछ और ही पाया गया। पहले तो यह ज्ञात हुआ कि प्रकृति घड़ी की सुइयों की तरह छोटे झटकों में ही आगे बढ़ती है। आइंस्टाइन ने मेक्स प्लांक के असांतत्य सिद्धान्त में एक और विलक्षण एवं क्रान्तिकारी बात

१. देखिये नीथम जे, लिंग विंग, साइन्स एण्ड सिविलिजेशन इन चाइना, केम्ब्रिज, १९५४-खंड १, २, ३ इत्यादि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोड़ी। प्राचीन विज्ञान ने निश्चय पूर्वक घोषणा की थी कि प्रकृति केवल उसी पथ पर चल सकती थी, जो समय के आदि से अन्त तक के लिए कारण और कार्य की अविच्छिन्न शृंखला में निश्चित हो चुका था। 'क' स्थिति के पश्चात् क्रम से अनिवार्यतः 'ख' स्थिति प्रकट होती थी। किन्तु आज तक का नया विज्ञान केवल इतना ही बतला सका है कि 'क' स्थिति के बाद 'ख', 'ग', 'घ' या अन्य असंख्य स्थितियों में से कोई भी एक स्थिति हो सकती है। नया विज्ञान 'ख', 'ग', 'घ' स्थितियों के घटने की आपेक्षिक सम्भाव्यताओं का निर्देश कर सकता है।[1] यहाँ केवल सम्भाव्यता है, निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किसी एक स्थिति के बाद दूसरी स्थिति क्या होगी? क्वांटम के ऐसे सिद्धान्त की रहस्यात्मक इकाई 'h' है, जो गति में वृद्धि को नापती है। हाइजेन-बर्गादि द्वारा यह ज्ञात किया गया कि कण और तरंगें मूलतः एक हैं और श्रोएडिंजर ने तरंग यान्त्रिकी को स्थापित कर एक नया वैज्ञानिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया, जो सूक्ष्म जगत् की आने वाली घटनाओं को समझा सकता है। वह भी पूरी तरह नहीं। इस प्रकार आधुनिक भौतिकी द्वारा विश्व के स्वरूप को समझने का प्रयास और उससे खगोल विद्या के रहस्यमय आयाम, विश्व का आयतन, उसमें विभिन्न आकाशीय पिण्डों के स्वरूप और उनके गमन तथा उनकी उत्पत्ति आदि के विभिन्न कलन लगातार प्राप्त किये जा रहे हैं।

मैक्सवैल (१८३१ ई० से १८७९ ई०) ने यूनानी एटमों (परमाणुओं) को विश्व की अनश्वर आधारशिला बतलाया था और यह विश्व केवल परमाणुमय ही माना गया था। विकिरण को पदार्थ का मूल संघटक अंग न माना जाकर केवल कम्पन माना जाता था। किन्तु बाद में ज्ञात हुआ, वे एटम (परमाणु) विद्युत् कणों तथा अन्य प्रकार के गमनशील कणों से निर्मित हैं, जिनसे सारा विश्व निर्मित है। आइन्स्टाइन ने बतलाया कि ऊर्जा (energy) तथा द्रव्यमान(mass) में परस्पर सम्बन्ध है और एक दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं। यह एक घातक रहस्य था, जिनके आधार पर अणुशक्ति का प्रादुर्भाव हो सका और अणुबम आदि के निर्माण होने लगे। फिर हाइड्रोजन बम बनाने के आधार पर सूर्यादि पिण्डों पर होने वाली प्रक्रिया समझी जा सकी। सूर्य अपना भार तभी स्थिर बनाये रख सकता है, जबकि पदार्थ लगभग २५ करोड़ टन प्रति मिनट की दर से सूर्य के भीतर पहुँच रहा हो—इतना विकिरण भार सूर्य से प्रति मिनिट ऊर्जा के रूप में प्रक्षिप्त होता रहता है।

सूर्य और ताराओं के जीवन काल का अनुमान उपर्युक्त के सिवाय अन्य तरीकों से भी प्राप्त किया जा सकता है। उनकी अन्तरिक्ष में गति ही बतलाती है कि उनका जीवन काल लाखों-करोड़ों वर्षों का है। गुरुत्वाकर्षणादि शक्ति के सहारे सम्पूर्ण गतिमान विश्व के पिण्ड अपने आप में नियत गति हैं, सुरक्षित हैं। स्थूल जगत् में आइंस्टाइन का सापेक्षता सिद्धान्त वास्तविक ठहरता है और सूक्ष्म जगत् में कवांटम यांत्रिकी। सूर्य और ताराओं की गतियों से ज्ञात होता है कि उनका जीवन काल लाखों-करोड़ों वर्ष होगा।

अन्तरिक्ष वास्तव में किस आकार का है? इस प्रश्न को भी भौतिकी ने कई प्रकार से साधित किया। अन्तरिक्ष स्वयं में वक्र है, जैसी पृथ्वी स्वयं में नारंगी की वक्रता लिये हुए है।

१. किन्तु आइन्स्टाइन ने इस तथ्य को कभी मान्यता नहीं दी। उनका विश्वास था कि ईश्वर मानव के साथ पाँसे (डाइस) नहीं खेल सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आइंस्टाइन ने विश्व को साबुन के बुलबुले के समान ही माना। उनके अनुमान के अनुसार विश्व में पदार्थ से उत्पन्न वक्रता के साथ ही साथ एक सहज वक्रता भी होती है, जिसके कारण पदार्थ का परिमाण बढ़ने पर उसका आकार भी बढ़ जाता है। यदि विश्व पदार्थ-विहीन हो जाये तो वह असीम आकार का हो जाये। यह भी हो सकता है कि पदार्थ के परिमाण को बढ़ाने से विश्व का आकार घट जाये। इस प्रकार का संरचित विश्व क्या अस्थाई नहीं होगा ? ऐसे परिमित विश्व में वास्तविक अंतरिक्ष गतिशील पिण्डों को लिये हुए या तो फैल रहा होगा या सिकुड़ रहा होगा ? प्रोफेसर डी सिटर ने भी माना था कि आकाश और काल के अपने गुणों के कारण विश्व में एक निश्चित परिमाण में वक्रता होती है और विश्व के पदार्थों के कारण उत्पन्न वक्रता आकाश और काल से उत्पन्न वक्रता की तुलना में नगण्य है। यह धारणा आइंस्टाइन को पूरक है। आइंस्टाइन का अस्थाई विश्व जैसे-जैसे बढ़ता जायेगा, उसमें पदार्थ विरल होता जायेगा और अन्ततः डी सिटर का विश्व रिक्त रूप में रह जायेगा।

विश्व कितना विशाल है, इसका अनुमान एक उदाहरण से प्रस्तुत है। किसी नीहारिका का प्रकाश (१ सेकेन्ड में १८६००० मील की गति से) हमारे पास पहुँचने में ५ करोड़ वर्ष लग जाते हैं और ऐसी नीहारिकाएँ हमसे लगभग ४५०० मील प्रति सेकेन्ड की गति से दूर भाग रही हैं। आइंस्टाइन के सिद्धान्तानुसार प्रकाश का वेग ही विश्व में महत्तम है और गतिशील वस्तु से भी निकलने वाला प्रकाश उसी अपने वेग से निकलता है। प्रश्न है कि क्या यही प्रकृति के कणों का महत्तम वेग है ? ऐसे कण जिनका वेग प्रकाश कण के वेग से अधिक हो सकता है, टेख्यिान रूप में कल्पित किये गये हैं।

आज अन्तरिक्ष की शोध पर अणुशक्ति यान व प्रयोगशालाएँ स्थापित कर करोड़ों रुपयों का व्यय किया जाता है। हाल ही संयुक्त राष्ट्र अमेरीका का चन्द्रतल पर पहुँचने का खर्च २५,०००० लाख डालर आया था और अन्य मद में ३०००० लाख डालर आया है। यह शोध नियन्त्रण योग्यता की ही है। अभी भी अन्यत्र खगोलीय पिण्डों में जीवन के आसार नहीं मिल सके हैं। किन्तु चन्द्रतल की शोध से ज्ञात हुआ है कि वहाँ की चट्टानें ३७० करोड़ वर्ष पुरानी हैं। इसी प्रकार अन्य जानकारियों ने रहस्यमय विश्व के अनेक सिद्धान्तों को नया मोड़ दिया है।

अब रेडियो, दूरवीक्षण यन्त्र भी नई कहानियाँ बतला रहे हैं। स्काईलैब में प्रयुक्त अति दूरस्थ उपग्रहों पर स्थित यन्त्र फ्रेड हायल के सिद्धान्त को अब अनुचित ठहरा रहा है तथा बिग बैंग सिद्धान्त के पक्ष में उपस्थित कर रहे हैं। उनके द्वारा × – किरण ज्योतिष का भी विकास हुआ है, जिनसे पल्सरों और क्वासरों का अविष्कार हुआ है। इनके अतिरिक्त अन्तरिक्ष की गहराईयों में एंटी-मेटर आदि से निर्मित काले छिद्र भी आविष्कृत हुए हैं। हमारा सूर्य स्वयं एक सितारा है, जो ५×१०^{९} वर्ष की आयु का है और लगभग इतने ही काल तक रहेगा। इसके पश्चात् वह श्वेत बौना न्युत्रान तारा तथा कृष्ण छिद्र में बदलता जायेगा। जब सभी नाभिक इंधन सूर्य का समाप्त होगा, तब वह ग्रह जैसा सफेद बौना तारा रूप में बदल जायेगा और पल्सर कहलाने लगेगा। उसे पल्सेटिंग रेडियो सोर्स कहा जायेगा। ऐसे तारों का आविष्कार १९६८ में केम्ब्रिज के रेडियो ज्योतिषियों ने किया। इसी प्रकार १९६० में अत्यन्त सघन ऊर्जा वाले तारों क्वासरों का आविष्कार हुआ, जो क्वासी स्टेलर रेडियो सोर्सेज़ कहलाते हैं। इनका व्यास अनेक किलो प्रकाश वर्ष

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है। इसी प्रकार नीहारिकाओं के फैलाव की कहानी विचित्र है। इन सभी आविष्कारों के बीच जीव-विज्ञान भी पनप रहा है और उसकी नियन्त्रण योग्यताओं का अध्ययन भी यन्त्र जैसा हो रहा है। भारत के दो उपग्रह आर्यभट्ट तथा भास्कर एवं अन्य उपग्रह अनेक रहस्यों को खोलने हेतु विशेष कार्य कर रहे हैं।

नेमिचन्द्राचार्य की मान्यताएँ

उपर्युक्त तारतम्य में अब हम वर्द्धमान महावीर के तीर्थ में उदित खगोल विद्या का अध्ययन करेंगे। चूँकि नेमिचन्द्राचार्य का कार्य आचार्य परम्परागत ज्ञान के आधार पर संकलित हुआ, इसलिए उनकी मान्यताओं का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन श्रुत परम्परा। इसे लगभग ईसा की प्रथम सदी माना जा सकता है।

खगोल विद्या सम्बन्धी दो रचनायें नेमिचन्द्राचार्य की निम्नलिखित हैं—द्रव्यसंग्रह (५८ श्लोक) एवं त्रिलोकसार (१०१४ श्लोक)। द्रव्यसंग्रह बृहद्द्रव्यसंग्रह के नाम से भी विख्यात है। सबसे प्रथम इसी ग्रन्थ से बालबोध प्रारम्भ किया जाता है। इसमें नय की सरलता, पदार्थविज्ञान एवं खगोलविद्या का प्रथम द्वार खुलता है। लघुद्रव्यसंग्रह भी २६ गाथाओं में उपलब्ध है। द्रव्य-संग्रह पर संस्कृत में श्री ब्रह्मदेव सूरि की टीका उपलब्ध है। त्रिलोकसार पर संस्कृत में माधवचन्द्र त्रैविध्य एवं पं० टोडरमल की हिन्दी भाषा टीका उपलब्ध है। अभी श्री महावीरजी से प्रकाशित आर्यिका श्री विशुद्धमती द्वारा नवीन रूप में अवतरित त्रिलोकसागर भी दृष्टव्य है। इनके सिवाय खगोलविद्या सम्बन्धी जानकारी गोम्मटसार एवं लब्धिसार में भी उपलब्ध है।

अब हम देखेंगे कि नेमिचन्द्राचार्य ने खगोलविद्या सम्बन्धी मान्यताओं को किस प्रकार स्पष्ट किया है। समस्त विश्व में सर्वप्रथम जीव और अजीव के दो जगत् विभक्त किये गये। जीव के विभिन्न लक्षण व्यवहार नय तथा निश्चय नय (behavioral purport and deterministic purport) पर आधारित किये गये हैं। व्यवहार नय से तीनों कालों में जीव के इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास है, किन्तु निश्चय नय से उसके चेतना (consciousness) ही है। उसका उपयोग ज्ञान दर्शनमय है, वह स्वयं अमूर्त है, कर्ता है, निज शरीर के बराबर है, भोक्ता है, संसारी तथा सिद्ध है। व्यवहार नय से विवेचन वैज्ञानिक प्रयोग का आधार बनता है और निश्चय नय से व्याख्या वैज्ञानिक सिद्धान्त का आधार बनती है। अदृष्ट, अमूर्तता, इन्द्रियग्राह्य न भी हो, तो भी उसका अस्तित्व है, वह जानी जा सकती है, लक्षण में स्थापित की जा सकती है। बन्ध होने से व्यापार में जीव मूर्त और वर्ण, रस, गंधमय अथवा पौद्गलिक सामग्री के लक्षणों से पूर्ण दिखाई देता है। (द्रव्यसंग्रह १-८)।

सबसे बड़ी उपलब्धि यह मान्यता है कि जीव यन्त्रवत् भी है, उसे पौद्गलिक यन्त्र द्वारा साइमुलेट (simulate) किया जा सकता है और इस प्रकार के व्यवहार से आत्मा पुद्गल कर्मादि का कर्ता होता है। उस यन्त्र में पुद्गल का आस्रव होता है, उसमें बन्ध होता है, निर्जरा उदयभूत होती है और इसमें रुकावट या संवर भी होता है। इस प्रकार का पुद्गल यन्त्र भौतिक विज्ञान का आधार बन जाता है। उसमें आने जाने वाले परमाणुओं की गिनती, उनकी ऊर्जा का परिमाण, उनके रहने की स्थिति तथा उनके द्वारा जीवादि को दिये गये फल, अनुभाग की भी गणना हो सकती है। यह जीव के विकारी भावों के निमित्त (field) को पाकर ही हो सकता है, अन्यथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे होगा ? यह कारणता का नियम है। सिद्ध जीवों के शुद्ध भाव होते हैं, वे पौद्गलिक यन्त्रों के परिवर्तन में निमित्त नहीं होते हैं। इससे कारणता का नियम प्रकट हो जाता है। (द्रव्यसंग्रह ९)।

जीव के विकास सम्बन्धी तथ्य हैं कि इन्द्रियों का क्रमशः विकास एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक होता है। स्पर्शन् इन्द्रिय वाले जीव पृथ्वी, जल, तेज, वायु और वनस्पति काया वाले स्थावर होते हैं। फिर दो, तीन आदि वाले जीव त्रस कहलाते हैं। एक से चार इन्द्रियवाले असंज्ञी अर्थात् अविकसित मस्तिष्क (brain) अथवा मन-रहित होते हैं। एकेन्द्रिय बादर और सूक्ष्म होते हैं, जैसे वाइरस, बेक्टीरिया आदि। पुनः वे सभी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। इस प्रकार विज्ञान की ओर जागृत ये मान्यताएँ क्रमशः अध्ययन का विषय बनती हैं। (द्रव्यसंग्रह १०-१३)।

पुद्गल को मेटर (matter) कहा जा सकता है। किन्तु पुद्गल परमाणु एक विशिष्ट तथ्य है, उसे अल्टीमेट पार्टिकल या कान्स्टीट्यून्ट (ultimate particle or Constituent) कहा जा सकता है। आज का विज्ञान इस तक पहुँचने का अभी दावा नहीं कर सका है और इसके सम्बन्ध में विभिन्न मत तथा सिद्धान्त प्रस्तुत किये जा सकते हैं। क्या जैन परमाणु ऊर्जा में बदल जाता है ? उत्तर है—नहीं। परमाणु की ऊर्जा की सतहें अनन्त हो सकती हैं, उनमें परिवर्तन हो सकते हैं, वह परमाणु का गुण है, उनके अंश हो सकते हैं किन्तु ऊर्जा, परमाणु नहीं हो सकती। परमाणु से स्कन्ध बनते हैं। उनके रूप, शब्द, बन्ध सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप आदि हो सकते हैं—ये पर्याय रूप हो सकते हैं, किन्तु परमाणु स्वयं ऊर्जा नहीं हो सकता है, यह मान्यता है। शक्ति वस्तु अलग है, परमाणु वस्तु अलग है। (द्रव्यसंग्रह १६)। "गुणपर्यायवद् द्रव्यं" इसका आधार है।

अजीव द्रव्यों में पुद्गल द्रव्य के सिवाय धर्म-द्रव्य, अधर्म-द्रव्य, आकाश-द्रव्य, काल-द्रव्य खगोल विद्या में आते हैं। धर्म, अधर्म अमूर्त हैं, अदृष्ट हैं। किन्तु उनका अस्तित्व है, जैसे ईथर और इनर्शिया का। ये दोनों जीव और पुद्गल के क्रमशः गमन और स्थित होने में सहकारी हैं, जैसे मछली के गमन के लिए तालाब का पानी और यात्री को विश्राम हेतु स्थित करने में पेड़ की छाया। गति और स्थिति में जीव और पुद्गल ही सक्रिय तत्त्व हैं, किन्तु धर्म, अधर्म सक्रिय कारण नहीं, वे केवल उदासीन कारण हैं। आइंस्टाइन ने आकाशकाल की ज्यामिती द्वारा धर्म-अधर्म जैसे ईथर के अस्तित्व को भौतिकी से बाहर कर दिया। क्योंकि ईथर को पौद्गलिक गुण देने पर पृथ्वी की गति नहीं प्राप्त की जा सकी। अतः यह मानना पड़ा कि प्रकाश की महत्तम गति चलती हुई पृथ्वी पर से अपनी गति किसी भी दिशा में नहीं बदलती है। इसलिए ईथर सम्बन्धी मान्यता एक भुलावा मात्र है, क्योंकि उसमें मैटर के कोई गुण नहीं हैं। ईथर के बिना माने भौतिकी की गणनाएँ, घटनाओं की व्यवस्था जम सकती है। क्या जैनागम में धर्म-अधर्म को बिना माने ऐसी कोई व्यवस्था जम सकती है ? उत्तर है—नहीं। अमूर्त मान लेने पर पौद्गलिक गुणों को देने की जरूरत तो नहीं है, किन्तु लोक-व्यवस्था का फिर क्या होगा ? लोक आकाश में हैं, अलोक भी आकाश में है। यदि लोक में जीव और पुद्गल ही होते तो क्या होता ? बिना काल के परिवर्तन न होता। बिना धर्म द्रव्य के गति नहीं होती। बिना अधर्म द्रव्य के स्थित न होती। धर्म-अधर्म द्रव्य की मान्यता इस रूप में वैज्ञानिक है कि वह लोक के अनन्त आकाश में पूर्ण बिखराव का नियन्त्रण करती है। आज का विज्ञान लोक की सम्पूर्ण अनन्त आकाश में बिखराव की स्थिति को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी हद तक स्वीकार करता है। किन्तु जैन दर्शन के अनुसार कोई शक्तियाँ हैं, जो उन्हें अनन्त दूरी पर ले जाने से रोकेंगी। यदि हैं तो क्या वे नष्ट नहीं हो सकती हैं? यदि ऐसी शक्तियाँ नष्ट हो सकती हैं, तो प्रश्न होता है कि अनादिकाल से लोक-व्यवस्था क्यों बनी रही—पूर्ण रूप से अति विरल क्यों नहीं हो गई। इसका उत्तर विज्ञान कैसे दे सकता है? वहाँ धर्म और अधर्म द्रव्यों को मान लेने पर लोक की अनन्त आकाश के बहुमध्य भाग में एक व्यवस्थित स्थिति बन जाती है जिसके बाहर जीव, पुद्गल की गति नहीं होने से लोक के विरल होने और नष्ट होने का प्रश्न नहीं उठता है। सिद्धान्त साधारणतः धारणाओं पर निर्भर करता है और मान्य होता है, यदि पूर्वापर विरोधादि का अभाव हो। (द्रव्यसंग्रह १५-१८)।

आकाश द्रव्य अवकाश हेतुत्व लिये है, काल वर्तना हेतुत्व लिये है। कालाणु रत्नों की राशि के समान केवल लोकाकाश में असंख्यात प्रदेशी हैं। इसकी आवश्यकता लोक के बाहर क्यों न हुई। लोक के बाहर केवल आकाश ही है, अन्य कुछ नहीं; अतएव वर्तना का वहाँ प्रश्न नहीं उठता। जीव, धर्म, अधर्म द्रव्यों का माप भी असंख्यातप्रदेशी है, चाहे जीव में संकोच-विस्तार होता रहे। होगा ही, क्योंकि जैसा वर्तन होगा, वैसा उसमें द्रव्य समावेगा। द्रव्य, गुण और पर्यायों में द्रवित होता है। काल को छोड़कर अन्य द्रव्य अखण्ड अथवा खण्ड-खण्डरूप समूहों में विस्तारयुक्त होने से अस्तिकाय कहलाते हैं। पुद्गल द्रव्यों में इस प्रकार के समूह (स्कन्ध) प्रदेश संख्येय, असंख्येय और अनन्त होते हैं। इन सभी तथ्यों में वैज्ञानिकता है।

जीव के असंख्यात प्रदेशों में कर्म परमाणुओं का बन्ध कितना हो सकता है—यह तथ्य तीव्र एवं मंदता के कारण चलराशि का द्योतक है। एक ओर जीव के योग, कषाय परिणामों का चलन, दूसरी ओर तदनुसार कर्म परमाणुओं की प्रकृति, प्रदेश, अनुभाग, स्थिति में चलन या फलन (Variation functioning)। जैनाचार्यों ने इसके आनुपातिक चलन या फलन की विवेचना तक ही अपने को सीमित नहीं रखा, वरन् कितना चलन या फलन होगा, इसके भी नाप, माप, प्रमाण आदि स्थापित किये गये। (द्रव्यसंग्रह २५-२६)।

प्रदेश और समय क्रमशः आकाश एवं काल माप की इकाईयाँ हैं। जितना आकाश एक अविभागी परमाणु से घेरता है, उसे समस्त परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ प्रदेश कहते हैं। इसकी विचित्रता इस तथ्य में है कि एक प्रदेश में केवल एक या दो परमाणु ही नहीं, अनन्तानन्त परमाणुओं का समावेश हो सकता है। इसके आधार पर गणितीय काम्पेक्टनेस (compactness) अथवा संहतता की सांस्थितिक समष्टि का मापन होता है। आकाश अखण्ड है, सांतत्यक (continuum) है, जिसके परिमित भाग में केवल परिमित संख्या के प्रदेश ही माने गये हैं। यह प्रदेश जैन प्वाइन्ट (point) अथवा बिन्दु है। और समय क्या है? उसकी काल विषयक परिभाषा परमाणु की गति से बँधी है। जितने काल में एक परमाणु दूसरे संलग्न परमाणु का अतिक्रमण करे, वही परमाणु उतने काल में १४ राजू छलांग ले सके, उसे समय माना गया है। इससे मंदतम और और तीव्रतम गति का बोध होता है। यहाँ काल में दिशा-परिवर्तन का भी प्रश्न उठता है। पर्याय परिवर्तन का यही समय है, जो कालाणुओं के वर्तन से भी लक्षित होता है। इससे छोटे काल की कल्पना नहीं है। इतने ही अखण्ड समय में परमाणु की स्थिति १४ राजू के सभी प्रदेशों में है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है, जिस पर सहसा विश्वास नहीं होता है। यहाँ विरोध नहीं अपितु विरोधाभास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(paradox) उपस्थित होता है। साधारणतः किसी भी समय किसी भी वस्तु की स्थिति एक ही स्थान पर होनी चाहिये। किन्तु सूक्ष्म जगत् का नियम ही कुछ और है। गतिशील होते ही वह एक ही समय में अनेक प्रदेश में स्थित ऋजु रेखा पार कर सकती है। प्रश्न है कि क्या वक्र रेखा पर नहीं ? यहाँ स्थिति का अर्थ position है, life time नहीं। इस तथ्य का सूक्ष्म अध्ययन आज के विज्ञान की अनिश्चितता सम्बन्धी क्वांटम यान्त्रिकी के सिद्धान्त में नया मोड़ ला सकता है। यह देखना होगा कि प्रकृति में सबसे सूक्ष्म काल का अन्तराल क्या है। यह भी देखना होगा कि इस अन्तराल में सबसे सूक्ष्म हटाव कितना होता है और अधिकतम कितना। अभी तक ज्ञात सबसे सूक्ष्म अन्तराल (१०)-१४ सेंटीमीटर है, अथवा $^{1}/_{(10)^{14}}$ सेन्टीमीटर है। प्रकाश की गति एक सेकेन्ड में $३ \times (१०)^{१०}$ सेन्टीमीटर है, जो इस दूरी को $(१०)^{-२४}$ अथवा $^{1}/_{(10)^{24}}$ सेकेन्ड में तय करती है।

विश्वप्रहेलिका में मुनि महेन्द्रकुमार (द्वितीय) ने १ प्राण का मान ४४४६$\frac{२४५६}{७७७३}$ आवलिकाएं प्राप्त किया है, जो $\frac{१६८६}{७७७३}$ सेकेन्ड के लगभग होना चाहिये। एक आवलि में जघन्ययुक्त असंख्यात समय होते हैं, जिसकी संख्या की गणना की जा सकती है। उसे दाशमिक रूप में लाकर आज के ज्ञात सूक्ष्मतम कालान्तराल से तुलना की जा सकती है। उसी पर आधारित पल्यकाल के समयों की संख्या है, जिसका सम्बन्ध सूच्यंगुल के प्रदेश संख्या माप से निम्नलिखित है—

सूच्यंगुल प्रदेश संख्या = पल्य के समयों की संख्या में उसी संख्या का पल्य के अर्धच्छेद बार गुणन से प्राप्त संख्या

हो सकता है कि मंदतम गति की अवधारणा ध्रुवीकरण जैसी घटनाओं पर गहराई तक प्रकाश दे सके।

अब कुछ त्रिलोकसार विषयक विवरण पर आयें। खगोल विद्या से सम्बन्धित लोक की सीमाएँ, उसमें ज्यामितीय खण्ड, चारों ओर से वेष्टित पदार्थ, कुछ भूगोल, कुछ ज्योतिकीविज्ञान तथा अन्य तथ्य हैं। इस ग्रन्थ में कुछ नवीन तथ्य अवश्य हैं, यथा ऋतु, राहु, मध्यप्रदेश, धारा विवरण आदि। हम सर्वप्रथम इस बात को समझने का प्रयत्न करें कि इन तथ्यों को प्रकाशित करने में जैन मत का प्रयोजन (अभिप्राय) क्या था ? लोक का आकार 'पुरुष', जो सर्व प्राणियों में सर्वाधिक विकसित अवस्था है—सिद्ध का भी अन्ततः आकार वही है। कमर पर हाथ रखे हुए पुरुष को चारों ओर घुमा देने पर शंक्वाकार छिन्नक पिण्डों वाला लोक दृष्टिगत होता है, जो आधार और शीर्ष आदि के नापानुसार ठीक ३४३ घन राजू नहीं होता है। वीरसेनाचार्य ने उसे स्फान (wedge) के आकार में सिद्ध कर उसे ठीक ३४३ घन राजू सिद्ध किया और विगत परम्परा को बदल दिया।[1] आधार प्रमाण लोक और द्रव्य लोक की सिद्धि थी। प्रमाण या जीवों की संख्या वाली पट्टियाँ बतलाते हुए इन ग्रन्थों में दशा का विवरण भी चलता रहा, और अन्ततः न केवल ज्योतिष वरन् भौगोलिक वर्णन भी उसमें प्रमाण रूप से तथा विवरण रूप से स्थान पा गये। एक बात तो यह है कि इस बात का ध्यान नहीं रखा गया कि किस प्रकार का अंगुल अथवा योजन वहाँ उपयोग में आ रहा है। आत्मांगुल, प्रमाणांगुल और उत्सेधांगुल, तीनों के लिए केवल अंगुल प्रतीक बनता चला गया। छायामाप से भौगोलिक गणनाएँ होती थीं, गगनखण्डों में ग्रहों की स्थिति, अथवा तारादिगणों की जम्बूद्वीप सम्बन्धी गणनाएँ भी होती थीं और इन दोनों को मिला देने पर

१. षड्खण्डागम, पुस्तक—४, १९४२, पृ० ११ आदि देखिये आकृतियाँ १, २, ३।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोणीय एवं रेखीय माप भी कुछ स्थानों में गृहस्थ को विभ्रम में डाल देते रहे हैं।[२] आवश्यकता है कि इनका सम्पूर्ण विश्लेषण किया जाये। जिस प्रकार का योजन जहाँ लागू हो, वहाँ उसका यथावत् नाम दिया जाये; तब कहीं आधुनिक विज्ञान से उसकी तुलनाओं में ज्यादा अन्तर नहीं आवेगा। (त्रिलोकसार १८)।

रज्जु क्या है ? उसकी गणना असंख्यात द्वीप समुद्रों में स्थित ज्योतिष बिम्बों की संख्या पर भी आधारित है, और ऊर्ध्व लोक तथा अधोलोक की सीमाओं से भी सम्बन्धित है। इस प्रकार लोक या अन्तरिक्ष की गहराईयाँ केवल दृष्ट आकाशीय पिण्डों पर ही आधारित नहीं हैं। उस अन्तिम दूरी से भी सात राजू ऊपर की ओर तथा सात राजू नीचे की ओर विस्तृत है। मिस्र देश के हरपिदोनाप्री भी रस्सों के माप में पिथेगोरस के साध्य का उपयोग करते थे। ऊपर की ओर स्वर्ग ही होंगे, नीचे की ओर नर्क ही होंगे—यह सापेक्ष तथ्य ही है। गोल पृथ्वी के लिए दिशाओं की अवधारणा भी सापेक्ष ही होगी। इस प्रकार लोकाकाश एक ऐसी कल्पना का चित्र बना, जो प्रमाणों को बैठा सके, आत्मा को बैठा सके, उसकी उपलब्धियों को बैठा सके, साथ ही ज्योतिलोक को दिग्दर्शित कर सके। सभी कुछ करतल आमलकवत् हो सके। (त्रिलोकसार ११०)।

किस सीमा तक भौतिक सुख हो सकता है और भौतिक दुःख, इसका भी चित्रण लोक के नक्शे में किया गया। उसे भी ऊँचाई और गहराई दी गई। सातवाँ नरक राजू नीचे और उससे भी नीचे नित्यनिगोद के दुःख की गहराई। ऊपर की ओर आत्मा की उपलब्धियों सहित सुख सोलहवें स्वर्ग तक और फिर अहमिन्द्रों और उससे भी सुख की अधिक ऊँचाई सिद्धों की। यदि इसे दिशा निरपेक्ष न मानें, ज्यामितीय आधार को गुणादि का आधार मानें तो वह आत्मलोक होगा। इस प्रकार अध्यात्मवाद और द्रव्यवाद आदि अनेक रूप में लोक स्वरूप को समझाने का प्रयास किया गया। (त्रिलोकसार १४४–२०३, ४५१–५६०)। श्रुत जहाँ तक, जिस रूप में, प्रतीकबद्ध होकर बोध दे सका, आत्मोन्नति में वहाँ तक प्रयास होते रहे। ज्ञानलोक की विवेचना आगे करेंगे। किन्तु इसके पूर्व कुछ ज्योतिष एवं भूगोल की भी चर्चा कर ली जाये।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, जैनों की ज्योतिष सम्बन्धी गणनायें रहस्यमयी थीं। एक सूर्य के समक्ष और दूसरा चन्द्रादि को आमने-सामने चलाकर सम्भवतः वे ग्रहणादि की गणनाएँ करते रहे। चीन, बेबिलान आदि कुछ अन्य देशों में इसी प्रकार की पद्धति प्रचलित थी। पथ को दुगुना कर उसे वृत्तों अर्थात् अक्षांशों और देशांशों में गगनखण्डादि रूप में विभाजित कर प्रायः १००० वर्षों तक पञ्चवर्षीय युगवाला पञ्चांग जारी रहा। इसमें वेदांग ज्योतिष के ज्ञान के सिवाय नये तथ्य, अयनादि के गणन डाले गये। चन्द्र और सूर्य की चालों के पञ्चांग पूर्ण रूप से मिलते हैं, किन्तु ग्रह-गमन सम्बन्धी सामग्री विनष्ट हो गई। यतिवृषभ (पाँचवीं सदी) ने इस बात का उल्लेख किया है।

जैन धर्म ग्रन्थों में यूनानियों एवं अन्य भारतीय ज्योतिषियों की ज्योतिष पद्धति प्रवेश नहीं कर सकी। धर्म में सर्वज्ञता का अगम्य विश्वास जैन आचार्यों को पूर्व स्वीकृत पद्धति से विचलित

---

२. सूर्य गमन के लिए देखिये,
Jain, L. C.—On the Spiro-elliptic Motion of the Sun implicit in the, Tiloyapannatli, I. J. H. S., vol. 13, no. 1, 1978, pp. 42–49.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न कर सका और वास्तव में उस पद्धति में अपने आप मौलिकता तो थी ही, ग्रहों के संचरण का भी पञ्चाङ्ग उसी वृत्त पद्धति से समाविष्ट किया जा सकता था, किन्तु इस ओर प्रयास यतिवृषभ के पश्चात् किये ही नहीं गये और न यह जानने का प्रयास हुआ कि ग्रहों की चाल का जैनागम में क्या विवरण रहा होगा ?

पुनः चित्रा पृथ्वी क्या है ? मेरु पर्वत किस निर्देश का द्योतक है ? चित्रा पृथ्वी से ऊँचाई का क्या तात्पर्य है ? इन प्रश्नों को विगत वर्षों में कई संगोष्ठियों में प्रस्तुत किया गया है। उनके उत्तर भी निकाले गये। मेरु पर्वत एक खगोलीय अक्ष के रूप में निर्देशांकों का चित्रण करता रहा होगा, जहाँ भी इसकी स्थिति रही हो, वह बीचों-बीच ही स्थित होगी और कहीं उत्तर दिशा की ओर इसका प्रेक्ष्य रहा होगा। चित्रा समतल को भूमध्य रेखीय समतल माना जाता रहा हो, जिससे ज्योतिर्बिम्बों की ऊचाईयाँ योजन के कोणीय माप देती रहीं हों। शेष विवरण वैज्ञानिक है, पञ्चांग में अन्तर्भूत है।

किन्तु चन्द्र और सूर्य आदि की देवांगानायें उस प्राचीन काल की याद दिलाते हैं, जब दैविक और आधिदैविक शक्तियों की मान्यता थी। उनमें वैज्ञानिक तथ्यों का प्रवेश नहीं हुआ था। क्या जैन मत में इन अगणनीय शक्तियों की मान्यता थी और वह भी किस सीमा तक ? यह विचारणीय है। जैन मान्यता में एक द्रव्य की दूसरे द्रव्य पर्यायों पर नैमित्तिक प्रभाव माना गया है, जो उपादान द्रव्य की योग्यता पर निर्भर करता है। द्रव्य की द्रव्यता पर त्रिकाल में कोई प्रभाव नहीं होता है। जीव जीव ही रहेगा, काल काल ही, आकाश आकाश ही, पुद्गल पुद्गल ही रहेंगे। उनके गुण भी वही रहेंगे। बात केवल पर्याय तक अटकती है, जो समयवर्ती होती है। द्रव्य स्वातन्त्र्य में पर्याय परिवर्तन स्वयं द्रव्य की योग्यता से होता है। व्यावहारिक भौतिक विज्ञान कारणता चाहता है और कारणता में कम से कम एक समय का अन्तर चाहता है। साथ ही पारस्परिक सम्बन्ध स्थिति चाहता है। उसी के आधार पर विज्ञान आगे की घटना का अथवा विकारी पर्याय का फलादेश करना चाहता है। फिर पर्याय समूह का भी फलादेश चाहता है। अनेक पुद्गल द्रव्य का पिण्ड पर्याय समूह का पिण्ड बन जाता है और समूह में ही उसका फलादेश अपेक्षित होता है। जीव और पुद्गल सम्बन्धी कर्मपिण्ड का फलादेश दिया जाता है। परिस्थितियाँ बतलाई जाती हैं, उनमें प्राणी की योग्यता के अनुसार योग और कषायानुसार तथा आत्मा के स्वतन्त्र परिणामानुसार क्या होगा ? यह फलादेश कर्म ग्रन्थों में मिलता है। किन्तु यह सभी अन्त सहित क्षणभंगुर निस्सार, सुखाभासी होने के कारण एक नवीन विज्ञान की ओर झुकाव होता है। वह है—वीतराग विज्ञान। मोह का अभाव जितने अंशों में होता जाता है, उतने अंशानुपात में ज्ञान चेतना की जागृति और आत्मा के निर्मल परिणामों की शक्ति एवं समृद्धि बढ़ती है। अस्तु, देव, देवियाँ, नारकी आदि सभी निज कर्मानुसार ही संचरणादि करते हैं। जैनाचार्यों की दैविक और आधिदैविक शक्तियों की यह अवधारणा अन्ध विश्वास के लिए नहीं है।

राहु कोई देव नहीं हैं, नाम के विमान हैं। वे भी दिन राहु, पर्व राहु, ऋतु राहु, जो चन्द्र-कलाच्छादन, ग्रहण, संवत्सरादि के कलन में उपयुक्त होते हैं।

असंख्यात द्वीप समुद्र क्या हैं, उनके दिग्दर्शन का अभिप्राय क्या है ? एक तो लोक की सीमा और उसमें करोड़ों ज्योतिर्बिम्बों का, स्थिर एवं अस्थिर व्यवस्था के अभिप्राय से इतने द्वीप समुद्रों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का एक समतल में फैलाव बतलाया गया है। अढ़ाई द्वीप तक जहाँ तक मानुषोत्तर पर्वत है, नक्शा देने की आवश्यकता तो है ही। इनमें सभी रचनाएँ सम्मिलित हैं। द्वीप और समुद्र ठीक वृत्ताकार किस तथ्य के द्योतक हैं? इन सभी बातों से प्रतीत होता है कि विस्तृत क्षैतिज समतल में विभाजन की आवश्यकता पड़ी होगी और वृत्ताकार क्षैतिज रूप में द्वीप समुद्रों की कल्पना करते हुए रज्जू के विस्तार को भरा गया। इसका एक उपयोग और था। वह था—पल्योपम और सागरोपम की वर्ष एवं समय संख्या राशि प्राप्त करना। अस्तु, जम्बूद्वीप में ही भौगोलिक सामग्री भी भर देने का प्रयास किया गया होगा। यह निश्चित है कि जम्बूद्वीप को एक लाख योजन मानने पर उसकी तुलना आज की पृथ्वी के भूगोल से हो ही नहीं सकती है। न ही उसके पर्वतों और नदियों की तुलना आज की भौगोलिक वस्तुओं से की जा सकती है। यह तब तक असम्भव है जब तक कि यहाँ प्रयुक्त योजन को निर्धारित नहीं किया जाता है। लिश्क एवं शर्मा ने[1] × (४९८२०) अर्थात् (४४८२०—५०००) योजनों को पृथ्वी के गोल के ६६° में मान्यता दी है। वहीं ५१० योजनों को आत्मांगुल पद्धति में ४८° की मान्यता दी है। इस प्रकार ६६° चाप $\frac{५१०}{४८}$° × ६६ = ७०१$\frac{१}{२}$ योजन आत्मांगुल पद्धति में उत्सेधांगुल पद्धति के १४०२$\frac{१}{२}$ योजनों में परिवर्तित हो जाते हैं। इन्हीं का मान चीनी ली माप में १४०२$\frac{१}{२}$ × ३५ = ४९०८७ ली होता है। यह माप ४९८२० के विशेष निकट है। उन्होंने तदनुसार एक योजन को पृथ्वी पर ६$\frac{१}{२}$ मील के लगभग मान कर ७०१$\frac{१}{२}$ योजन जम्बूद्वीप की त्रिज्या को पृथ्वी की त्रिज्या, जो ४००० मील के लगभग है, ला दिया है।[2] यह प्रयास वास्तव में प्रशंसनीय है। योजन यहाँ कोणीय माप के रूप में सूर्य और चन्द्र के उत्तर-दक्षिण गमन के अवलोकन से अवतरित हुआ होगा। उन्हीं मापों में जम्बूद्वीप को लेना तो एक सीमा तक ठीक है, किन्तु प्रश्न है कि शेष द्वीप समुद्रों के विवरण का क्या अभिप्राय रहा है? यह तथ्य भी स्पष्ट है कि उनके द्वारा पल्य और सागर का तथा कुल ज्योतिष बिम्बों का संख्यामान स्थापित किया गया होगा।

नेमिचन्द्राचार्य की गणित-सम्बन्धी मान्यताएँ

और अब गणित विद्या का प्रारूप। गहराई तक जाने के लिए गणित के प्रतीकों में तन्मय रहना पड़ता है। सबसे स्पष्ट निरूपण है—ज्यामिति, जीवामिति अथवा रेखागणित का, जिसका अनुसरण यूनानियों ने विलक्षण ढंग से अनेक प्रकार की गणित को सरल बनाने में किया। जैसे √२ अर्थात् २ का वर्गमूल किस प्रकार रेखा में प्ररूपित हो? समकोण त्रिभुज में यदि आधार और लम्ब दोनों ही एक-एक इंच हों तो उनका कर्ण √२ होता है और आसानी से नापा व समझा जा सकता है। नेमिचन्द्राचार्य के विवरण में उपमा मान में बहुत कुछ यही रेखागणित है, जिससे कई प्रकार की राशियों के मान स्थापित किये गये हैं।

---

१. Lishk, S.S.; Sharma, S.D.—The Evolution of Measures in Jain Astromony Tirthankar Vol. I, nos. 7. 12, Jul. Dec. 1975, 73–92.

२. चीन में छाया माप द्वारा सूर्य की ऊँचाई १,००,००० ली ज्ञात की गई, जबकि पृथ्वी की गोलाई का कोई अनुमान नहीं था। अतएव इसे ८०० योजन मान लेने पर योजन लगभग ९$\frac{१}{२}$ मील आता है, जिससे पृथ्वी की परिधि लगभग २३००० मील प्राप्त हो जाती है। इसके द्वारा भौगोलिक सामग्री व तथ्यों को जैनागम के अनुसार व्यवस्थित करने सम्बन्धी शोध को बढ़ावा मिल सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूच्यंगुल का अर्थ वह प्रदेश संख्या है, जो अंगुल सूची विस्तार में संलग्न रखी जा सके। प्रतरांगुल का अर्थ वह प्रदेश संख्या है, जो एक अंगुल लम्बे-चौड़े वर्ग में संलग्न समा सके। इसी प्रकार घनांगुल का अर्थ है। जगश्रेणी का अर्थ वह प्रदेश संख्या है, जो जगश्रेणी विस्तार को संलग्न रूप से पूरित करती है। जगप्रतर एवं घनलोक के अर्थ प्रदेश संख्याओं से हैं। इन संख्याओं का उपयोग विभिन्न प्रकार की जीव राशियों की गुणस्थान वा मार्गणास्थान में पाई जाने वाली संख्या का निरूपण करने में हुआ है। यह एक विलक्षण प्रणाली है, जो विश्व में कहीं उपलब्ध नहीं है।

पल्य का अर्थ क्या है? पल्य वह समय संख्या है, जो पल्यों (गढ़ों) के विविध निर्माणादि विधि से सम्पन्न, उन्नत होती है। काफी बड़ी संख्या है। इससे कर्म स्थिति, आयु आदि के माप होते हैं, इसी प्रकार सागर भी समय संख्या की राशि का द्योतक है। इन्हें उपमा प्रमाण कहा जा सकता है, क्योंकि इनकी उपमा देते हुए अन्य राशियों के प्रमाण क्षेत्र कालादि रूप में स्पष्ट किये गये हैं।

इसी प्रकार संख्या प्रमाण द्रव्य राशियों के प्रमाण का द्योतक होने से द्रव्य प्रमाण भी कहलाता है। यह क्रमशः संख्येय, असंख्येय एवं अनन्त होता है। संख्येय और अनन्त के बीच असंख्येय एक नई कल्पना है। किन्तु यह प्रमाण मात्र शाब्दिक नहीं है, वरन् परिमाण बोधक, संख्या बोधक भी है।

नेमिचन्द्राचार्य के युग में मान दो प्रकार के थे—प्रथम लौकिक दूसरा लोकोत्तर। लौकिक मान में प्रस्थादि को मान, तुलादि को उन्मान, चुल्ल आदि को अवमान, संख्या को गणिमान, रत्ती मासा आदि को प्रतिमान और अश्व के मूल्यादि को तत्प्रतिमान रूप में मान्यता थी। लोकोत्तर मान के चार प्रकार थे। द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान। ये चतुर्दिक् आयाम असाधारण थे। क्योंकि इनके द्वारा किसी भी राशि का मान अच्छी तरह ज्ञात किया जाता था। इनके जघन्य और उत्कृष्ट मानों के तथा मध्यम मानों के उपयोग संख्याओं की ओर ज्ञात राशियों की असीम सीमाओं को बाँधते थे। (त्रिलोकसार १०—१२)।

विश्व के गणित इतिहास में तब तक कहीं भी द्रव्य, क्षेत्र, काल द्वारा भावमान अथवा ज्ञानमान की व्यवस्था इस रूप में उपलब्ध नहीं है। निम्न सारणी द्वारा इन मानों का निरूपण किया गया है—

मान	जघन्य	उत्कृष्ट
द्रव्यमान	एक परमाणु	सम्पूर्ण द्रव्य समूह (समस्त जीव, पुद्गल परमाणु इत्यादि)
क्षेत्रमान	एक प्रदेश	सर्व आकाश (प्रदेश)
कालमान	एक समय	सर्व काल (समय)
भावमान	जघन्य, सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक का पर्याय नामक ज्ञान (अविभागी प्रतिच्छेदन) राशि	केवल ज्ञान (अविभागी प्रतिच्छेद) राशि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार ऐसी कोई वस्तु नहीं थी, जो मान की इकाईयों द्वारा मापी न जा सकी हो। द्रव्यमान के तीन भेद थे—संख्येय, असंख्येय और अनन्त। ये गणना-उपयोग में आते थे। सविस्तार इनके भेद बनाये गये, इनमें राशियाँ पिरोई गईं तथा असंख्येयता और अनन्तता का वास्तविक गुण निर्मित किया गया। वीरसेन ने अनन्त उस राशि को संज्ञा दी, जो अनन्तकाल तक व्यय होते हुए भी समाप्त न हो। यथा, मिथ्यादृष्टि जीव राशि अनादिकाल द्वारा समाप्त नहीं हो पाई है, यद्यपि भव्य मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा उस राशि का व्यय जारी रहा। निम्नलिखित सारणी से स्पष्ट होगा कि संख्यामान के रूप क्या थे ?

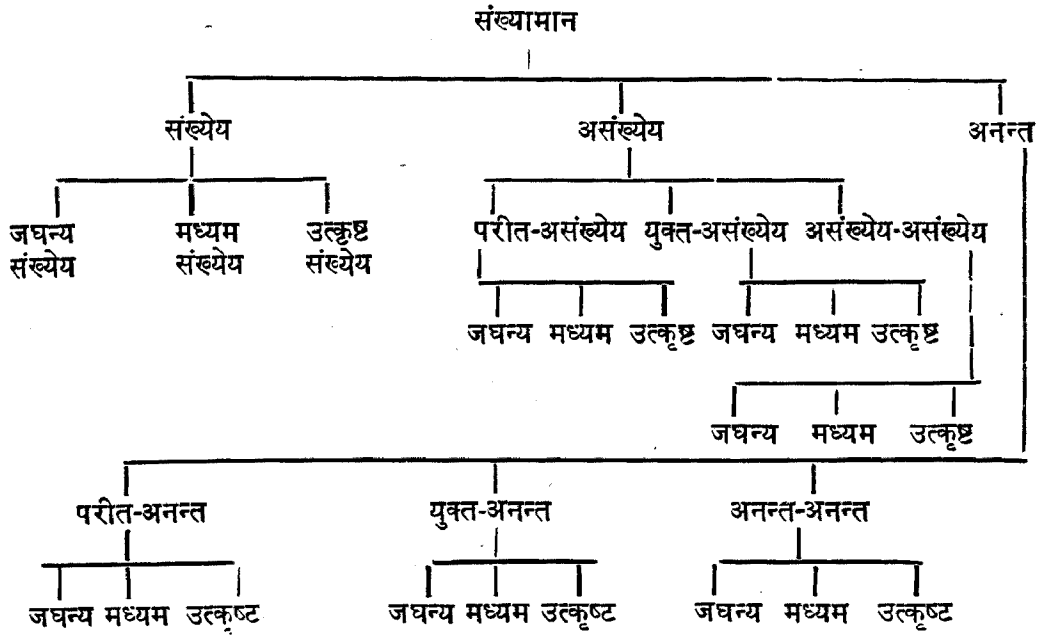

पूर्व परम्परानुसार नामानन्त, स्थापनानन्त, द्रव्यानन्त, गणनानन्त, अप्रदेशिकानन्त, एकानन्त, उभयानन्त, विस्तारानन्त, सर्वानन्त, भावानन्त और शाश्वतानन्त में से यह गणनानन्त की रूप रेखा है। उत्कृष्ट संख्यात श्रुत केवली का विषय बनता है, संभवतः जितना कुछ प्रतीकों, शब्दों आदि से समझा जाता हो। उत्कृष्ट असंख्येय अवधिज्ञानी का विषय बनता है, जो रूपी पदार्थों के रूप से सम्बन्धित हो सकता है—जितने रूप दूरियों में समाये हों, वे अवधि ज्ञानी के लिए उत्कृष्ट असंख्येय तक बन पाते होंगे। अनन्तानन्त केवल ज्ञानी का विषय बनता है, जिसमें कोई भी ज्ञान का अंश नहीं छूट पाता होगा।[1]

संख्यामान का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग है—अनन्तों के अल्पबहुत्व का। क्या अनन्त से बड़ा अनन्त होता है ? क्या अनन्त के बराबर दूसरा अनन्त तथा किसी अनन्त से छोटा अनन्त भी होता है ? इन सभी प्रकार के अनन्तों का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है और संख्याओं में इनके अस्तित्व को जार्ज केन्टर (१८४५-१९१८) ने १८६४ के बाद के शोध पत्रों में लगातार बतलाया

१. देखिये तिलोपण्णत्ती का गणित, पृ० ५५-६२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और सिद्ध किया। निस्सन्देह उन्हें तत्कालीन उच्चकोटि के गणितज्ञों से बड़ा कड़ा संघर्ष करना पड़ा। आज जार्ज केन्टर को राशि सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है और इसका आज इतना विकास हुआ है तथा उपयोग हुआ है कि कोई विज्ञान न तो इससे अछूता है न ही इसके बिना आधारित है।

अनन्त से बड़े अनन्त का अस्तित्व सिद्ध करना एक दृष्टि से सरल है, किन्तु अनन्त से बड़ा अनन्त निर्मित कर दिखाना कठिन है। केन्टर ने एक विधि बतलाई, जिससे बड़ा अनन्त उत्पन्न किया जा सके, किन्तु दो अनन्तों के बीच कौन सा अनन्त है, यह वह न दिखा सके। किन्तु जैनागम में धाराओं द्वारा प्रायः सभी प्रकारों के प्रमुख अनन्तों की क्रमवार स्थिति नेमिचन्द्र के त्रिलोकसार में उपलब्ध है। ऐसा वर्णन और कहीं उपलब्ध नहीं है। परिमित संख्याओं की क्रमवार स्थिति दिखाना सरल है, किन्तु किसी धारा (sequence) में क्रमशः आने वाले अनन्तों की स्थिति दिखाना एक बहुत ही बड़े बुनियादी कार्य का परिणाम हो सकता है।

उदाहरणार्थ, द्विरूपवर्गधारा($_{२}{}^{२^n}$)में आने वाले संख्येय, असंख्येय अनन्त विशेषता लिये हुए n पद वृद्धिगत में क्रमशः जघन्य परीतासंख्यात, आवली, पल्य, अंगुल, जगश्रेणी का घनमूल, जघन्य परीतानन्त, अभव्य जीव राशि, सर्वजीव राशि, सर्व पुद्गल राशि, सर्वकाल राशि, श्रेण्याकाश एवं प्रतराकाश प्रदेशराशि, धर्माधर्मद्रव्य-अगुरलघु-अविभाग-प्रतिच्छेद-राशि, एकजीव-अगुरलघु-अविभाग-प्रतिच्छेद-राशि, जघन्य-ज्ञान-अविभाग-प्रतिच्छेद राशि, जघन्य-क्षायिक लब्धि (सम्यक् दर्शन) अविभाग राशि प्रतिच्छेद राशि और केवल ज्ञान अविभाग प्रतिच्छेद राशि और बीच की राशियों सहित प्रकट होती है। फर्मा (१६०१-१६५५) गणितज्ञ ने $_{२}{}^{२^n}+१$ संख्याओं की (n के विभिन्न मानों के लिए) विशेषता पर कार्य किया था।

इसी प्रकार दिव्यरूपघन धारा ($_{२}{}^{३\cdot(२)^{n-१}}$) में आवलिघन, पल्य, घन, जगश्रेणी प्रदेश राशि, जीवराशि घन, सर्वाकाश (तथा बीच की संख्याएँ) प्राप्त होती हैं। यथा, पल्य वर्गशलाका घन, पल्य अर्धच्छेद घन आदि भी। द्विरूप घनाघन धारा में लोकाकाश प्रदेशराशि, तैजास्कायिक जीवराशि, गुणकार शलाका राशि, तैजस्कायिक जीवराशि, तैजस्कायिक स्थिति, अवधिनिबद्ध उत्कृष्ट क्षेत्र, स्थितिबद्ध प्रत्यय स्थान, रसाबंधाध्यवसाय स्थान, निगोद जीव काय उत्कृष्ट संख्या, निगोद काय स्थिति, सर्वज्येष्ठ योग उत्कृष्ट अविभाग प्रतिच्छेद आदि राशियाँ प्राप्त होती हैं। इसमें थोड़ा सा अन्तर दृष्टव्य है :—

$$_{२}{}^{३^{२}(२)^{n-१}}$$

उपर्युक्त धारायें द्विरूप (dyadic) हैं, जिन पर केन्टर द्वारा गहन कार्य किया गया था। केन्टर के अनुसार यदि No कोई अनन्तात्मक संख्या हो तो उससे बड़ी अनन्तात्मक संख्या $_{२}{}^{No}$ होगी। इसमें संचय का भेद छिपा हुआ है। जैसे ६४ अक्षरों से बनने वाले पदों की कुल संचय संख्या $(२)^{६४}-१$ होगी।

आज के सभी विज्ञानों में सर्वाधिक महत्त्व उस विधि का है, जो जघन्य (minimal) और उत्कृष्ट (maximal) पर आधारित है। जैन आगम में गति समय, प्रदेश, ज्ञान आदि प्रत्येक के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध में जघन्य और उत्कृष्ट मान प्रस्तुत किये हैं, जो(extremals)कहलाते हैं। इन सभी तथ्यों की, जहाँ जघन्य और उत्कृष्ट का बंधन लगाया जाता है, प्रकृति के नियम, बलों और घटनाओं के क्षेत्र सम्बन्धी नियम अपने आप प्राप्त होते हैं। यह एक बहुत ही गहरे रहस्य की बात है, जिस पर निम्न-लिखित रूप से वैज्ञानिकों का ध्यान गया और आज भी जटिलतम विज्ञानों के रहस्यमय नियमों को ज्ञात करने में ये ही मान उपयोग में लाये जाते हैं—मोपेर्शू (Mau pertuis : १६९८-१७५९) का जघन्य कर्म (action) का सिद्धान्त, फर्मा का जघन्यकाल का सिद्धान्त, हेरन (लगभग ५० ई०) का जघन्य पथ का सिद्धान्त, गाऊस (१७७७-१८५५) का जघन्य नियंत्रण का सिद्धान्त, जैकोबी (१८०४-१८५१) एवं हैमिल्टन (१८०५-१८६५) के जघन्य परिवर्तन के सिद्धान्त, हर्त्ज़ (१८५७-१८९४) का जघन्य वक्रता का सिद्धान्त, आइन्स्टाइन (१८७९-१९५५) का प्रकाश सम्बन्धी निश्चल उत्कृष्ट गति का सिद्धान्त, यह याद दिलाते हैं कि जघन्य और उत्कृष्ट के मानों में प्रकृति के अनेक रहस्य छिपे हुए हैं। मोपेर्शू ने सर्वप्रथम यह कहा था कि सभी सम्भव गतियों में से प्रकृति उसी को निर्वाचित करती है, जो अपने इष्ट स्थान पर क्रिया के अल्पतम व्यय से पहुँचती है। बाद के गणितज्ञों, आयलर (१७०७-१७८३) तथा लाग्रान्ज (१७३६-१८१३) द्वारा इसे परि-ष्कृत रूप दिया गया। इससे सम्बन्धित तत्त्वार्थ सूत्र का कथन है : विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः (२-२९)। इसमें गति सम्बन्धी रहस्य छिपा हुआ है।

इसी प्रकार गोम्मटसारादि में कर्म सम्बन्धी आस्रव, निर्जरा में जघन्य और उत्कृष्ट योग, कषायादि, जघन्य और उत्कृष्ट समयप्रबध्वादि, जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग प्रदेशादि के विवरण अत्यन्त गूढ़ प्रकृति रहस्यों को दिग्दर्शित करते हैं। यहीं फंक्शन और फंक्शनल का रहस्य छिपा हुआ है, जो विभिन्न राशियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। एक्शन (कर्म?) का मालिक क्वान्टम है, जो ६.६२४ × १०$^{-३४}$ अर्ग प्रति सेकेन्ड है। यहाँ जैनागम में यह जघन्य योगादि क्रियाओं से तुलना की वस्तु है। अविभागी प्रतिच्छेदों का भेद भी विशेष रूप से समझने योग्य है।

सार रूप में प्रस्तुत उपर्युक्त मान्यताएँ नेमिचन्द्राचार्य के कार्य को महत्त्वपूर्ण बनाती हैं। उनके वैज्ञानिक अध्ययन की परम आवश्यकता है, जिसमें उनकी महान् टीकायें सहायक सिद्ध हो सकती हैं, जो जीवतत्त्वप्रदीपिका एवं सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका के नाम से विख्यात हैं।

—प्राचार्य, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
धर्मटेकड़ी, छिन्दवाड़ा (म० प्र०) ४८०००१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org